बिज़नेस स्टैंडर्ड

सूखे से निजात

देश के सूखा पीडित राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी समेत देश के केंद्रीय नेतृत्व को जो मांग पत्र सौंपा है उसमें राज्यों के सूखे से निपटने के प्रयासों की उदारतापूर्वक मदद करने की मांग की गई है। इनमें तात्कालिक संकट से निपटने पर ध्यान दिया गया है। हालांकि वह एक वैध चिंता है लेकिन बहुत कम राज्य ऐसे हैं जिन्होंने मध्यम और लंबी अवधि के सूखे से निपटने के उपाय तैयार करने में मदद मांगी हो। जबकि भविष्य में सूखे से निपटने के क्रम में ये अत्यंत अहम उपाय हैं।

देखा जाए तो देश का करीब 55 फीसदी इलाका सूखे से बुरी तरह प्रभावित है और कुछ अन्य हिस्सा ऐसा है जो गाहेबगाहे वर्षा की कमी के चलते इसकी चपेट में आता है। यहां तक कि बेहतर मॉनसून वाले वर्षों में भी सूखे से निपटने की लगातार तैयारी रखना महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए परिस्थितियों का सही आकलन करना और जरूरत के मुताबिक नीतियां तैयार करना आवश्यक है ताकि सूखे से मजबूती से निपटा जा सके। वर्षा जल के संरक्षण के अलावा पानी का किफायती और उचित इस्तेमाल करना सूखे की समस्या को कम करने के लिहाज से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस उद्देश्य से जरूरी गतिविधियों में मौजूदा जल स्रोतों का पुनरुद्धार और उनका उचित रखरखाव, नए जलाशयों एवं जल स्रोतों का निर्माण और पानी के स्रोतों में जमी गाद को निकालना आदि अहम हैं। ये सारा काम सूखे के दौरान किया जाना चाहिए क्योंकि उस वक्त उनमें पानी नहीं होता। लंबी अवधि के दौरान मिट्टïी और पानी के संरक्षण के उपाय मसलन चकबांध बनाना तथा अन्य उपाय करने से भी पानी के फालतू बहाव को कम किया जा सकता है और यह पानी सूखे मौसम में काम आ सकता है।

सिंचाई के विस्तार को प्राय: विभिन्न इलाकों को सूखे से बचाने का उचित तरीका माना जाता है जो सही भी है। लेकिन यह पूर्ण उपाय नहीं है। क्योंकि तमाम उपलब्ध जल स्रोतों

को प्रयोग में लेने के बावजूद देश का करीब 40 प्रतिशत इलाका वर्षा पर ही निर्भर रहेगा। ऐसे में वर्षा जल संरक्षण को बढ़ावा देना अनिवार्य हो चला है। एक साल में होने वाली कुल बारिश का तकरीबन एक तिहाई हिस्सा तालाबों, टैंकों और कुओं आदि में संरक्षित किया जाना चाहिए ताकि उनका तत्काल इस्तेमाल किया जा सके। जबकि शेष पानी को भूजल स्तर बरकरार करने में प्रयोग में लाना चाहिए। भूमिगत जल संरक्षण पानी को संरक्षित करने का सबसे बेहतर तरीका है। खासतौर पर गरम और उष्ण इलाकों में जहां सतह पर एकत्रित पानी का तेजी से वाष्पीकरण होता है। फिलहाल देश में हर साल होने वाली बारिश का अधिकांश हिस्सा यूं ही बह जाता है। बहुत कम पानी को भूमिगत जल स्रोतों तक सुरक्षित पहुंचाया जाता है।

कुछ वर्ष पहले हिंदी में एक कहावत खूब प्रचलित हुई थी- खेत का पानी खेत में, गांव का पानी गांव में। हालांकि जलोत्सारण क्षेत्र भी पानी को एक क्षेत्र विशेष में ही सुरक्षित करने का काम करते हैं, वहीं ज्यादातर पानी साझा जल निकासियों में निकल जाता है। यह तरीका पानी को खेतों और गांवों में बरकरार रखने के विचार से मेल नहीं खाता। पानी को खेतों और गांवों में केंद्रित रखना व्यावहारिक है क्योंकि इससे संरक्षित पानी पर नियंत्रण और जरूरत के मुताबिक इस्तेमाल की बात जुड़ी हुई है जबकि जलोत्सारण क्षेत्र कई गांवों में मिलकर बनता है और उसके लिए तमाम नागरिकों और एजेंसियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। यह कठिन काम है। ऐसे में वक्त आ गया है कि सूखे से निपटने के क्रम में जल संरक्षण के मोल को पहचाना जाए।

विभाजनकारी नीति के खतरे

भारत इन दिनों राजनीति में आई नई तरह की भाषा और नारेबाजी की जद में फंसता जा रहा है। भारत के इतिहास, भूगोल और विविधता को देखते हुए यह आसान नहीं कि आधुनिक परिवर्तन के नाम पर इन्हें टुकड़ों में प्रभावित किया जाए। इसके लिए बड़े सामाजिक और राजनीतिक सुधार की दरकार है। दुर्भाग्य से आज देश में सरकार का नीतिगत रवैया कहीं से भी समग्रता भरा नहीं है। यह पूरी तरह से त्रटिपूर्ण और सांस्कृतिक पूर्वाग्रह से गहरे तौर पर प्रभावित है। इस तरह के मानस के पीछे जातिगत ऊंच-नीच, महिलाओं और दूसरे अल्पसंख्यकों को उनकी आस्था, संस्कृति, यौनिक स्वतंत्रता, परंपरा और खानपान की शैली के आधार पर मुख्यधारा से दूर धकेलने की मध्यकालीन मंशा को बहाल रखने की सोच है। इस तरह की सोच और मंशा राज्य शक्ति के चारों तरफ अपनी घेरेबंदी कर रही है। इनसे मुकाबले की सूरत में हिंसा तक भड़क उठती है। मेरे राज्य राजस्थान के बीकानेर में 17 साल की एक दलित लड़की के साथ दुष्कर्म और फिर उसकी हत्या की ऐसी ही एक हृदय विदारक घटना सामने आई। पीड़ित परिवार का आरोप है कि सरकारी महकमों की तरफ से उसे किसी तरह की कोई मदद नहीं मिल रही है। मेरे जैसे आदमी के लिए यह सरकारी रवैया बहुत हैरान करने वाला भी नहीं है। समाज में वंचितों और हाशिये पर खड़े लोगों की जिंदगी उन लोगों के मुकाबले कोई महत्व नहीं रखती जो हर लिहाज से दबंग हैं।

गुजरे सालों में सती प्रथा, डायन ठहराने की प्रवृत्ति, कन्या भ्रूण हत्या, अस्पृश्यता और सिर पर मैला ढोने जैसी सामाजिक कुप्रथाओं के खिलाफ कई विशेष कानून बनाए गए। इन कानूनों से सदियों से चली आ रही ऐसी रूढ़ियों और मान्यताओं को काफी हद तक रोकने में मदद मिली है जो सदियों से हमारे समाज में जड़ जमाए बैठी हैं और राज्य की उदार नीतियों को

पीछे ले जाती हैं। दिलचस्प है कि ऐसी रूढिग्रस्त सोच सबके लिए समान प्रतिनिधिक लोकतंत्र, आर्थिक खुलेपन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विभिन्न आंदोलनों, आर्थिक क्षेत्रों में सुधारवादी पहल के दौर में भी कई बार नजर आती है। हां, यह जरूर है कि आज विज्ञान के क्षेत्र में वैश्विक सहयोग, सूचना तकनीक और विवादों के निपटान के लिए वैकल्पिक मार्गों को प्रश्रय देने के कारण भारत को विश्व में एक सम्मानित और अग्रणी देश के रूप में देखा जाता है। इन मूल्यों को महज बहुमत या संख्याबल या मुनाफा कमाने की मंशा से नियंत्रित नहीं किया जा सकता। आज की सरकार और सत्तारूढ़ दल की यह एक बड़ी जिम्मेदारी है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि इस तरह के प्रेरक मूल्यों पर किसी तरह का प्रहार न हो। यह भी कि इन मूल्यों की बहाली सरकारी कामकाज की शैली में भी पूरी तरह सुनिश्चित होनी चाहिए। दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं रहा है। रोज-ब-रोज इस तरह के बयान आ रहे हैं जिनसे मध्यकालीन सामाजिक संरचना को फिर से खड़ा होने में मदद मिल रही है। खास समुदाय और जाति के लोगों और महिलाओं को लेकर एक भिन्न तरह का सार्वजनिक सुलूक और धार्मिक आचरण खुलेआम देखने को मिल रहे हैं। सरकारी कार्रवाई और पहल इन मामलों में कहीं से भी इस रूप में असरदार नहीं दिखती कि वह इस तरह के खतरनाक तत्वों को किसी सूरत में बर्दाश्त नहीं करेगी। इस तरह के अतिवादी और खतरनाक तत्व आज लोगों को समझाने में लगे हैं कि वे क्या पहनें, क्या खाएं, किससे शादी करें और देशभक्ति दिखाने के लिए किस तरह के नारे लगाएं।

मेरी समझ से सुशासन की एक अहम पहचान यह है कि वह सभी नागरिकों के सहयोग और सहभागिता से चले। विभेदकारी राजनीति से एक बार जीत या सत्ता में दोबारा से बने रहने का मौका भले मिल जाए, लेकिन उसके बाद समाज के भीतर जो अलगाव और भेदभाव पैदा होगा उससे बहुलतावादी सामाजिक चरित्र की जड़ें कमजोर होनी शुरू होंगी। इनको लेकर हमारी आस्था और हमारे भरोसे को भारी ठेस लगेगी। दादरी में घर में गोमांस रखने के शक में एक व्यक्ति की हत्या कर दी गई, लेकिन बाद में जांच में सामने आया कि जिस मांस को लेकर इतना कुछ हुआ वह गोमांस नहीं था। आखिर उन हत्यारों को किसने यह हक दिया कि वे किसी के घर में घुसें और इस आरोप में किसी की पीट-पीटकर हत्या कर दें कि वह अपने फ्रिज में क्या रख रहा है? सरकार में आला जिम्मेदारियों को निभा रहे लोग आज इस दरकार को बुलंद करने में लगे हैं कि हर भारतीय अपने राष्ट्रप्रेम के प्रदर्शन और जीवनशैली

के लिए एक खास अंदाज को अपनाए। इस सबसे भारत को लेकर घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दिलचस्पी एक खतरनाक मोड़ पर पहुंच गई है। रिजर्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन ने इन्हीं सब बातों के मद्देनजर यह कहा कि देश में सार्वजनिक बहस का स्तर काफी गिरा है और इससे हमारी आर्थिक नीतियों का असर निष्प्रभावी हो रहा है। अब जबकि आरबीआइ के गवर्नर तक देश के हालात को लेकर चुप्पी तोड़ने को बाध्य हो रहे हैं तो सरकार के प्रवक्ता यह कहने में देरी नहीं लगा रहे कि उन्हें राष्ट्रीय हित के सवालों पर संभलकर बोलना चाहिए।

एक तरफ जहां देश में विपक्ष को पूरी तरह अनसुना किया जा रहा है उस पर राष्ट्रद्रोही होने के आरोप मढ़े जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ समाज के कमजोर तबकों के खिलाफ अपराध काफी बढ़ गए हैं। एनसीआरबी द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के मुताबिक अनुसूचित जातियों-जनजातियों के खिलाफ दुष्कर्म के मामलों में तेजी आई है। अपराध का यह चढ़ता आंकड़ा तब और दोहरा जाता है जब हम देखते हैं कि पहले तो दलितों को अपने खिलाफ अपराध को सहना पड़ता है और बाद में न्याय के लिए भी दर-दर भटकना पड़ता है।

राजस्थान में अनुसूचित जातियों के खिलाफ पूरे देश में हो रहे अपराध का 17.1 फीसद दर्ज किया गया है। एक ऐसे सूबे में जहां देश की आबादी का महज 5.67 फीसद ही रह रहा है, यह आंकड़ा चौंकाता है कि यहां अनुसूचित जातियों के साथ दर्ज हुए आपराधिक मामले 2014 में 8028 थे, जबकि इसी दौरान उत्तर प्रदेश में ऐसे मामलों की संख्या 8075 रही। बता दें कि उत्तर प्रदेश में देश की कुल आबादी का 16.5 फीसद हिस्सा रहता है। एक ऐसी सूरत में जबकि राजस्थान और केंद्र में एक ही पार्टी की सरकार है, इस तरह की जमीनी सच्चाई को औद्योगिक नीतियों की चमकदार घोषणाओं से छिपाने की कोशिश हो रही है। सच्चाई यह है कि इन नीतियों के तहत राज्य में निवेश आना और बेरोजगारी दूर होना बाकी है। साफ है कि समाज में विभेद पैदा करने वाली शक्तियों को जब मजबूत होने का मौका दिया जाएगा तो ऐसे में पीड़ित पक्ष हमेशा कमजोर, पिछड़ा और हाशिए पर खड़ा तबका होगा।

[लेखक सचिन पायलट, केंद्र सरकार में मंत्री रहे अब राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हैं]

संसदीय लोकतंत्र पर नया खतरा

उत्तराखंड के ड्रामे का अंततः पटाक्षेप हो गया। किंतु यह प्रकरण कई महत्वपूर्ण प्रश्न पीछे छोड़ गया है, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है- विधायिका और न्यायपालिका के संबंधों का। हमारे संविधान की मौलिक व्यवस्था में शासन के तीनों अंगों यानी विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के कार्य क्षेत्रों का स्पष्ट बंटवारा है। तीनों में संतुलन बनाने का प्रयास किया गया है। धीरे-धीरे कार्यपालिका की अकर्मण्यता और भूल की वजह से उसका दायरा छोटा होता चला गया और न्यायपालिका का दायरा बढ़ता गया।

मुझे याद है जब मैं बिहार में मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर का प्रधान सचिव था तो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए मुख्यमंत्री को ही अपनी सिफारिश भेजते थे। मुख्यमंत्री विचार करने के बाद सिफारिश राज्यपाल को भेजते थे। फिर राज्यपाल यह सिफारिश भारत सरकार के विधि मंत्रालय को भेजते थे। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से विचार-विमर्श कर राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद नए न्यायाधीशों की नियुक्ति होती थी। फिर एक दिन जिस संविधान के अंतर्गत ऊपर अंकित प्रक्रिया का पालन होता था, zउस संविधान में बिना कोई संशोधन किए अपने एक आदेश से उच्चतम न्यायालय ने इस सारी प्रक्रिया को बदल डाला और न्यायाधीशों की नियुक्ति में अब कार्यपालिका का अधिकार लगभग समाप्त हो चुका है। उसी प्रकार लोकहित के नाम पर, पीआईएल के नाम पर तथा अन्य प्रयोगों के माध्यम से न्यायपालिका ने अपना दायरा बढ़ाने का काम किया है। हर मामले में न्यायपालिका का कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप बढ़ता गया। कार्यपालिका में आत्म-विश्वास की कमी इसका मुख्य कारण है।

धीरे-धीरे न्यायपालिका का यह अतिक्रमण अब विधायिका पर भी साफ दिखने लगा है। चाहे विधानसभा हो या संसद, अध्यक्ष का फैसला अंतिम फैसला माना जाता था। सदन की भीतर की कार्यवाही पर न्यायपालिका का कोई हस्तक्षेप नहीं हो सकता है, लेकिन दल-बदल का कानून लागू होने के बाद अध्यक्ष के आदेश को न्यायपालिका में चुनौती देना आम बात हो गई है। सदस्यों की सदस्यता बरकरार रहेगी या जाएगी, इस पर अध्यक्ष के फैसले को खुले तौर पर न्यायपालिका में चुनौती दी जा रही है और न्यायपालिका द्वारा इसमें हस्तक्षेप किया जा रहा है। किंतु अभी उत्तराखंड में जो हुआ उसमें न्यायपालिका का सीधे हस्तक्षेप सदन के भीतर जो कार्यवाही होनी थी, उसमें हुआ है। मार्च 2005 में झारखंड में भी इसी प्रकार की घटना घटी थी, जब तत्कालीन राज्यपाल सैयद सिब्ते रजी ने अल्पमत होने के बावजूद शिबू सोरेन को मुख्यमंत्री बना दिया था। तब हम लोग उच्चतम न्यायालय गए थे, जिसने शिबू सोरेन को सदन में बहुमत साबित करने के लिए कहा था। पूरी कार्यवाही के लिए एक पर्यवेक्षक भी नियुक्त किया गया था। विधानसभा की पूरी कार्यवाही की वीडियो रिकॉर्डिंग करवाने का आदेश भी दिया गया था। शक्ति परीक्षण के पहले ही शिबू सोरेन ने इस्तीफा दे दिया था। शक्ति परीक्षण की नौबत नहीं आई। हम लोगों ने उच्चतम न्यायालय के आदेश का स्वागत किया तथा सोरेन के अपदस्थ होने पर हमें प्रसन्नता हुई थी। सदन के भीतर की कार्रवाई में न्यायालय के हस्तक्षेप को हमने नज़रअंदाज कर दिया था।

उत्तराखंड मामले में भी उच्चतम न्यायालय का आदेश अत्यंत विस्तृत है तथा विधानसभा की कार्यवाही के हर पहलू पर है। कोर्ट के आदेशानुसार विधानसभा का विशेष सत्र 10 मई को सुबह 11 बजे के लिए निर्धारित किया गया। यह भी आदेश था कि इस सत्र का एकमात्र एजेंडा हरीश रावत के विश्वास मत पर मतदान होगा। 11 बजे से 1 बजे तक सदन की कार्यवाही चलेगी। सुबह 10:30 बजे से लेकर 1 बजे तक राष्ट्रपति शासन लागू नहीं रहेगा। कोर्ट ने विधानसभा के प्रधान सचिव को मतदान कराने और वीडियो रिकॉर्डिंग कराने का आदेश दिया। फ्लोर टेस्ट के नतीजे तथा कार्यवाही की वीडियो रिकॉडिंग सील बंद लिफाफे में 11 मई को सुप्रीम कोर्ट में पेश की जाएगी और फिर सुनवाई होगी। प्रस्ताव के पक्ष में मतदान करने वाले सदस्य एक-एक करके हाथ खड़ा करके मत देंगे और प्रधान सचिव उनकी गिनती करेगें। यही प्रक्रिया प्रस्ताव के विरोध में मतदान के दौरान अपनाई जाएगी।

आदेश के अनुसार 10 मई को मतदान कराया गया। न्यायालय द्वारा नियुक्त दो पर्यवेक्षक, सचिव विधानसभा तथा प्रधान सचिव विधि और संसदीय कार्य सदन में उपस्थित थे। अध्यक्ष गोविंद सिंह कुंजवाल ने कोर्ट का आदेश पढ़कर सुनाया। फिर हरीश रावत ने सदन के सामने विश्वास का मत रखा, जिस पर पक्ष और विपक्ष का मतदान हुआ और फिर दोनों पर्यवेक्षक अपना प्रतिवेदन लेकर सुप्रीम कोर्ट गए। कोर्ट ने विधानसभा अध्यक्ष में अविश्वास प्रकट करते हुए उन्हें इस प्रक्रिया का पालन करने का आदेश दिया। आदेश को स्वीकार करने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं था। अंतिम फैसला भी उनके हाथ में नहीं छोड़ा। मतों की गिनती करने के बाद भी उन्हें यह अधिकार नहीं था कि वे परिणाम की घोषणा करें। अंतिम परिणाम की घोषणा भी उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई। अध्यक्ष सहित पूरी विधानसभा उच्चतम न्यायालय के हाथों की कठपुतली बन गई। प्रश्न उठता है कि यदि 10:30 बजे सुबह से 1 बजे तक राष्ट्रपति शासन लागू नहीं था, तो संविधान की किस धारा के अनुसार राज्यपाल प्रदेश के मुखिया बने रहे। प्रश्न यह भी उठता है कि कल यदि लोकसभा में भी इसी प्रकार की परिस्थिति पैदा होती है तो लोकसभा की कार्यवाही कैसे चलाई जाएगी, कौन कहां बैठेगा आदि पर भी उच्चतम न्यायालय का विस्तार से आदेश आएगा? अगर ऐसा होता है तो विधायिका की क्या स्थिति बनेगी ?

इन सब के पीछे जो मूल कारण है वह है विधायकों, सरकारों और सदन के अध्यक्षों द्वारा निष्पक्ष कार्रवाई नहीं करना। सदन के अध्यक्ष के पद पर बैठकर यदि कोई व्यक्ति दलगत राजनीति से प्रेरित होकर फैसले करता है, नियम कानून और संविधान की धज्जियां उड़ाता है तो फिर न्यायपालिका का हस्तक्षेप होगा ही। प्रश्न यह है कि आने वाले दिनों में विधायिका अपने आचरण में सुधार लाती है या कार्यपालिका की तरह वह भी न्यायपालिका के सामने नतमस्तक हो जाती है? न्यायपालिका यदि संविधान में स्थापित संतुलन के साथ इसी प्रकार खिलवाड़ करती रही तथा विधायिका और कार्यपालिका उसके सामने झुकते रहे तो संसदीय लोकतंत्र के लिए बड़ा खतरा पैदा होगा। चुने हुए जनप्रतिनिधियों और चुनी हुई सरकारों के बदले देश में शासन की बागडोर बिना चुने हुए न्यायाधीशों के हाथ में चली जाएगी तथा नए प्रकार की डिटेक्टरशिप का आविर्भाव होगा।

जनसत्ता

मानहानि का मामला

मौजूदा मानहानि कानून सरकारों, ताकतवर राजनेताओं और भ्रष्ट नौकरशाहों व भ्रष्ट उद्योगपतियों को ही रास आता है, जिन्हें आलोचनाओं और खुलासों से अपने किले दरकने का भय सताता है।करीब डेढ़ सौ साल पुराने मानहानि कानून को सही ठहराने के सर्वोच्च अदालत के फैसले पर स्वाभाविक ही तीखी प्रतिक्रिया हुई है। दुनिया के अधिकतर देशों में मानहानि के मामले को दीवानी मामले की तरह देखा जाता है। इसलिए यह उम्मीद की जा रही थी कि भारत का सर्वोच्च न्यायालय भी विश्व भर में अधिकाधिक मान्य होते जा रहे दृष्टिकोण और लोकतांत्रिक तकाजों को ध्यान में रख कर मानहानि कानून की संवैधानिकता पर विचार करेगा। लेकिन उसके फैसले ने इस उम्मीद पर पानी फेर दिया है। गौरतलब है कि भारत में मानहानि एक आपराधिक मामला है, जिसमें दोष सिद्ध होने पर दो साल की सजा हो सकती है, इसके अलावा जुर्माना भी भरना पड़ सकता है। इस कानून की संवैधानिकता को चुनौती देने वालों में कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी, आम आदमी पार्टी के संयोजक अरविंद केजरीवाल और भाजपा नेता सुब्रमण्यम स्वामी भी थे। ये तीनों मानहानि के किसी न किसी मामले में आरोपी हैं, इसलिए संबंधित कानून को चुनौती देने में इनकी व्यक्तिगत दिलचस्पी भी रही होगी। पर इन याचिकाओं के बहुत पहले से भारतीय दंड संहिता की धारा 499 और 500 के औचित्य पर सवाल उठते रहे हैं। इन धाराओं के तहत मानहानि को एक आपराधिक कृत्य माना गया है। यह कानून ब्रिटिश हुकूमत की देन है। आज के समय में इसे प्रासंगिक क्यों माना जाए? इस कानून को संवैधानिक ठहराने के पीछे सर्वोच्च अदालत ने खासकर दो तर्क दिए हैं। एक यह कि हमारे संविधान का अनुच्छेद इक्कीस गरिमा के साथ जीने की गारंटी देता है, इसलिए अगर किसी की प्रतिष्ठा-हानि होती है तो यह एक अपराध है। दूसरे, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता असीम नहीं हो सकती। पर ये दोनों मकसद मानहानि को दीवानी मामला मान कर भी पूरे किए जा सकते हैं। मानहानि को आपराधिक मामला मानने से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार बाधित होता है, जिसकी गारंटी

संविधान के अनुच्छेद उन्नीस में दी गई है। मौजूदा मानहानि कानून सरकारों, ताकतवर राजनेताओं और भ्रष्ट नौकरशाहों व भ्रष्ट उद्योगपतियों को ही रास आता है, जिन्हें आलोचनाओं और खुलासों से अपने किले दरकने का भय सताता है। दूसरी तरफ इस कानून ने भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने वाले राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं और पत्रकारों के काम को अनावश्यक रूप से बहुत जोखिम भरा बना रखा है। कई राज्य सरकारों का रवैया इस बात का उदाहरण है कि आलोचकों को सबक सिखाने के लिए मानहानि कानून का किस कदर दुरुपयोग होता रहा है। मसलन, जयललिता सरकार ने पत्रकारों और राजनीतिक विरोधियों के खिलाफ मानहानिके करीब सौ मामले दायर कर रखे हैं। यह भी गौरतलब है कि केंद्र सरकार ने मानहानि कानून को ज्यों का त्यों बनाए रखने की वकालत की।सर्वोच्च अदालत ने अपने फैसले में निचली अदालतों के जजों और सरकारी अभियोजकों को हिदायत दी है कि मानहानि के मामले में समन भेजते समय वे सावधानी बरतें। यह सलाह खुद मौजूदा कानून के दुरुपयोग की ओर संकेत करती है। दुनिया भर की मिसालों, आपराधिक मानहानि कानून के बेजा इस्तेमाल के अनुभवों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से इसकी असंगति को देखते हुए इस कानून की संवैधानिकता को चुनौती दी गई थी। अच्छा होता कि मामले को दो जजों के पीठ के बजाय संविधान पीठ को सौंपा जाता। पर संसद चाहे तो इस कानून की प्रासंगिकता या इसके प्रावधानों पर पुनर्विचार की पहल कर सकती है।

चीन के इरादे

भारत और चीन के बीच अक्साईचिन को लेकर करीब चार हजार किलोमीटर लंबी सीमा पर विवाद है। अनेक मौकों पर चीनी सैनिक भारतीय सीमा के काफी भीतर तक घुस कर यह जताने की कोशिश कर चुके हैं कि वह इलाका उनका हैअमेरिकी रक्षा मंत्रालय ने एक रिपोर्ट जारी करके चिंता जताई है कि भारत से सटी सीमा पर चीन अपनी सैन्य मौजूदगी तेजी से बढ़ा रहा है। वह विभिन्न देशों में अपना आधार मजबूत कर रहा है, खासकर पाकिस्तान में सैन्य साजो-सामान और परमाणु हथियारों का केंद्र बना रहा है। हालांकि अमेरिका ने यह खुलासा नहीं किया है कि इसके पीछे असली वजह क्या है, चीन की अपनी आंतरिक सुरक्षा

मजबूत करने की मंशा या फिर बाहरी सुरक्षा। पर इस अमेरिकी रिपोर्ट से भारत की चिंता बढ़नी स्वाभाविक है। भारत और चीन के बीच अक्साईचिन को लेकर करीब चार हजार किलोमीटर लंबी सीमा पर विवाद है। अनेक मौकों पर चीनी सैनिक भारतीय सीमा के काफी भीतर तक घुस कर यह जताने की कोशिश कर चुके हैं कि वह इलाका उनका है। पिछले साल उत्तरी लद्दाख के काफी अंदर तक भारतीय सीमा में घुस कर चीनी सैनिकों ने अपने तंबू गाड़ दिए और सैन्य अभ्यास शुरू कर दिया। तब दोनों देशों के सैन्य अधिकारियों के बीच पांच दिन तक चली बैठक के बाद चीनी सेना वापस लौटी। तब कहा गया कि चीनी सैनिक नियमित अभ्यास के लिए उस इलाके में आए थे। इस तरह जब-तब चीनी सैनिकों की गतिविधियों के चलते भारतीय सीमा पर तनाव का वातावरण उपस्थित हो जाता है। इसलिए चीन के इरादे को लेकर कुछ भी साफ-साफ कह पाना मुश्किल है। अमेरिका ने इस मामले में भारत के प्रति अपना समर्थन जाहिर किया है, मगर सवाल है कि इस रिपोर्ट को लेकर भारत को किस तरह प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए। पाकिस्तान के साथ चीन के दोस्ताना रिश्ते छिपे नहीं हैं, पर भारत से उसकी दूरी के पीछे वजह सिर्फ सीमा विवाद नहीं है। अमेरिका ने रेखांकित किया है कि भारत परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह में सदस्यता का दावेदार है, जबकि चीन को यह नागवार गुजर रहा है। चीन अपने परमाणु कारोबार को विस्तृत करना चाहता है, इस बीच उसने अनेक परमाणु इकाइयां स्थापित की हैं। इसलिए अगर भारत परमाणु शक्ति के रूप में उभरता है तो चीन के बाजार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए उसका ध्यान पाकिस्तान को केंद्र बनाने पर है। मगर अमेरिका की चिंता है कि अगर चीन ने पाकिस्तान में अपने परमाणु केंद्र स्थापित कर लिए तो आतंकवाद के बढ़ते खतरे के मद्देनजर यह ज्यादा घातक हो सकता है। मगर इसे रोकने का तरीका क्या हो सकता है, अमेरिका ने स्पष्ट नहीं किया है। अमेरिका और चीन के रिश्ते छिपे नहीं हैं। अगर चीन पाकिस्तान की मदद करता है तो अमेरिका भी इस मामले में पीछे नहीं है। अभी भारत के साथ अपने रिश्ते मजबूत करने को लेकर भले वह गंभीर दिख रहा हो, पर जब भी भारत ने आतंकवादी गतिविधियों को पाकिस्तान की तरफ से मिल रहे बढ़ावे को रोकने की गुहार लगाई है, अमेरिका का रवैया ढुलमुल ही रहा है। भारत की परमाणु जरूरतों के मद्देनजर उसका परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह में शामिल होना जरूरी है। इसके लिए उसे अमेरिका की मदद चाहिए। मगर भारत के लिए चीन की अहमियत भी कम नहीं है। चीन से न सिर्फ उसके कारोबारी रिश्ते बेहतर हैं, वह भारत में निवेश बढ़ाने का इच्छुक है, बल्कि उसके साथ

सांस्कृतिक संबंध भी हैं। जहां तक सीमा विवाद का मामला है, दोनों देशों के बीच इसे लेकर समझौता है और उसे बातचीत के जरिए हल कर लिया जाता रहा है। इसलिए सामरिक तनातनी का माहौल बना कर उसे कुछ हासिल नहीं होगा।

Targeting RTI in the House

Written by Anjali Bhardwaj , Amrita Johri

The Right to Information (RTI) Act has undoubtedly been a most empowering legislation for citizens. The law has initiated the vital task of redistributing power in a democratic framework. It is perhaps this paradigm shift in the locus of power that has resulted in consistent efforts by the powerful to denigrate it. The latest attack on the legislation was witnessed recently in the Rajya Sabha, with several members of Parliament, across party lines, demanding amendments to the act.

A key allegation made on the floor of the House was that the RTI is being widely misused, especially to blackmail public functionaries. It was also argued that government servants are unable to take decisions objectively for fear of the RTI. This is not the first time that the issue of misuse of the RTI Act has been flagged. The previous prime minister alleged that a large number of frivolous and vexatious RTI applications are being filed resulting in a negative impact on the efficiency of the government.

These assertions, however, are not backed by data or evidence — a point which the office of the previous PM had to publicly concede when the RTI was invoked to ask

for the basis of the PM's views! Similarly, one of the MPs who raised these issues in the Rajya Sabha has reportedly admitted that his statements were based on anecdotal evidence drawn from some isolated cases.

On the contrary, two national studies on the implementation of the RTI, carried out by the RTI Assessment and Advocacy Group (RaaG) in collaboration with the National Campaign for Peoples' Right to Information (NCPRI), tell a completely different story. As part of the assessments, 20,000 RTI applications filed to different public authorities in the country were collected, of which detailed analysis of a randomly selected sample of 5000 applications was undertaken. Less than 1 per cent of the RTI applications analysed pointed towards the misuse of the law in terms of frivolous or vexatious information requests. The majority of applicants sought basic information about decisions and action taken by the government, norms related to the functioning of public authorities and the use of public resources. In fact, the studies showed that close to 70 per cent of the RTI applications sought information that should either have been made public proactively or communicated to the applicant without needing to file an RTI application.

The analysis also revealed that a little over 1 per cent applications were voluminous, in terms of requiring a lot of information, which could divert time of public servants. Again, a majority of the voluminous applications were asking for information that should have been disclosed proactively. Clearly, the poor compliance by public authorities with statutory provisions related to proactive disclosure of information is forcing people to file applications for information that should be publicly available to them. Even a government-sponsored nation-wide study in 2009 did not find any evidence to flag misuse.

In any case, how can objective government information, obtained under the RTI, be used to blackmail or harass anyone? On the other hand, if there is some wrongdoing, the RTI applicant would be rendering a service to the society by exposing it.

Another claim made by an MP was that anyone, even a "panwadi" (paan seller) and a "chaiwala" (tea seller), without establishing their locus, can use the RTI to ask

questions on sensitive issues from the government such as national secrets related to missile programs and international relations.

But the assertion that the RTI can be used to compromise national security is totally unfounded. Section 8 of the RTI Act spells out the restrictions to peoples' right to information. It exempts disclosure of various categories of information, including information, which would prejudicially affect the security of India and its relations with a foreign state, and personal information, which has no bearing on public activity or interest.

Finally, it is unclear why the honourable MP took exception to the use of the RTI legislation by citizens from a humble background, like a panwadi or a chaiwala. After all, our MPs never seem to complain when they get votes and collect taxes

(the poorest of the poor pay indirect taxes) from these very people. Then why the

hesitation to be answerable to them? The RTI Act is premised on the idea that democracy requires an informed citizenry. Members of Parliament would be well advised to look at the evidence before mulling amendments to it.

THE ECONOMIC TIMES

Need to Rework Tax Treaty with Singapore: FM

Says Lion City is a separate sovereign state and the Mauritius treaty does not ipso facto extend automatically

India will have to renegotiate its tax treaty with Singapore so as to include capital gains tax provisions of the recently-concluded tax pact with Mauritius, finance minister Arun Jaitley has said."Singapore is a separate sovereign state, it (Mauritius

treaty) does not ipso facto automatically extend. The principles will have to be applied...through a process of renegotiation," Jaitley said on Monday.

Responding to queries at the Indian Women Press Corps, he declined to give a timeline for renegotiations. "Sooner or later, that process will commence and hopefully conclude," he said.

"I am not giving it a timeline, because if you recollect, the renegotiation process of the Mauritius treaty started first in 1996 and it continued till about 2002 and then there was a pause. Singapore was entered into in 2005 and one of the covenants of Singapore was that provisions of what happens in Mauritius treaty would extend to it," Jaitley said.

India on May 10 amended the 33-year-old tax treaty with Mauritius and wrested back right to impose capital gains tax on share sales by investors from the island nation. The India-Singapore double taxation avoidance agreement also provides capital gains tax exemption but it was linked to such a provision in the India-Mau ritius tax treaty.

Mauritius and Singapore accounted for $17 billion of the total $29.4 billion India received in foreign direct investments (FDIs) during April-December 2015.

Following the revised pact with Mauritius, short-term capital gains tax will be levied at half the prevailing rate during the first two-year transition period from April 1, 2017 to March 31, 2019, and thereafter the full rate will kick in. At present, short-term capital gains are taxed at 15%.

In August 1982, India had signed the trea ty with Mauritius to eli minate double taxation of income and capital gains to encourage mutual trade and investment.

Asked about the possibility of RBI governor Raghuram Rajan's getting an extension, Jaitley quipped, "These are not issues which we discuss through the media." "As far as the finance ministry and RBI are concerned, there is an institutional relationship

between the two. It is a very mature relationship. We at the highest level at the two institutions have discussion and each other views is considered between us," he said.

Rajan's current three-year term as RBI chief is ending this September.

Rajan had on May 13 said he has enjoyed every moment of the job but there is "more to do", in possible indication of his interest in a second term.

Some quarters within the BJP are opposed to his continuing. Senior BJP leader Subramanian Swamy last week had suggested that Rajan should be removed and accused him of being responsible for high rate of unemployment and "collapse" of industrial activity.

"In my opinion, the RBI governor is not appropriate for the country. I don't want to speak much about him. He has hiked interest rates in the garb of controlling inflation that has damaged the country...The sooner he is sent back to Chicago, the better it would be," Swamy had told reporters outside Parliament.

Rajan, who had earlier served as chief economist of IMF and is known as a key commentator on financial issues globally, is on-leave professor of finance at University of Chicago's Booth School of Business. Jaitley on Monday also claimed that regional parties, including UPA allies like DMK and NCP, are all making strong noises in support of the goods and services tax (GST) legislation and it would be extremely difficult for Congress to take a contrarian view.

"I am reasonably confident because...every political party, including the Congress, favours GST. In fact, the Congress should have had the vision to support it more aggressively because they could cla im the original authorship of the idea," Jaitley said when asked if he was confident of passing the GST bill in the monsoon session.

"So, whether it is SP or BSP in Uttar Pradesh, JD(U) or RJD in Bihar, the Left in West Bengal and Kerala, the Trinamool in West Bengal, BJD...each one of the UPA partners from DMK to NCP is making strong noises in support," he said.

The GST bill, which has been approved by Lok Sabha, is pending in the Rajya Sabha because of stiff resistance by Congress, the largest party in the House, over a few proposals.

Jaitley said that if there is no consensus, the only alternative is a parliamentary vote. "I hope...the Congress party would revisit its position. I certainly would be keeping the discussions with them on. I always said my preference is a consensus must emerge because all state governments across political complexion has to implement it and therefore, consensus is the better way," he said. "And I do hope it moves in that direction. If consensus does not emerge, then the only other alternative is the parliamentary process. We will ask the Rajya Sabha and take a view on it."

The minister said the number count of all those supporting the GST shows that barring the AIADMK, which has some mixed voices, every other regional party has strong interest in passing the legislation because it helps these states

---

Goodbye FIPB, hello sectoral regulation

The government's reported move to do away with the Foreign Investment Promotion Board (FIPB) makes eminent sense. The board was set up in early 1990s to have an extra check on foreign ownership since sectoral rules weren't robust. Rightly, successive governments have put more sectors under the automatic route and set up sectoral regulators for thorough oversight. Robust regulation obviates the need for the FIPB. Already, more than 90% of foreign direct investment (FDI) is under the automatic route, and investors have to only inform the RBI. Isn't this a signal that GoI is, by and large, agnostic about the ownership pattern? With a well-developed corporate sector, a sound legal framework and huge economic potential, India remains one of the most attractive FDI destinations. Making FDI approvals

automatic would pay rich dividends. Australia, for example, has a Foreign Investment Review Board.

Like the FIPB, it is a non-statutory body. Australian law empowers the Treasurer to block foreign investment proposals or apply conditions to the way proposals are implemented to ensure they do not hurt national interest. In India, however, a similar statutory check and balance on the functioning of the FIPB is absent. Ideally, the government should allow free foreign investment except in critical areas of national interest and sensitive sectors such as the media. Sectoral FDI caps, varying between 49% and 74% across sectors as diverse as insurance, defence projects and banking, have only led to a policy mess, opening up a profitable market for Indian businessman to become a passive partner of overseas companies wanting to set up shop in India as holders of economic interest owned by the foreign party. Removing caps and allowing majority control by foreign partners in sectors such as insurance is the way to go.